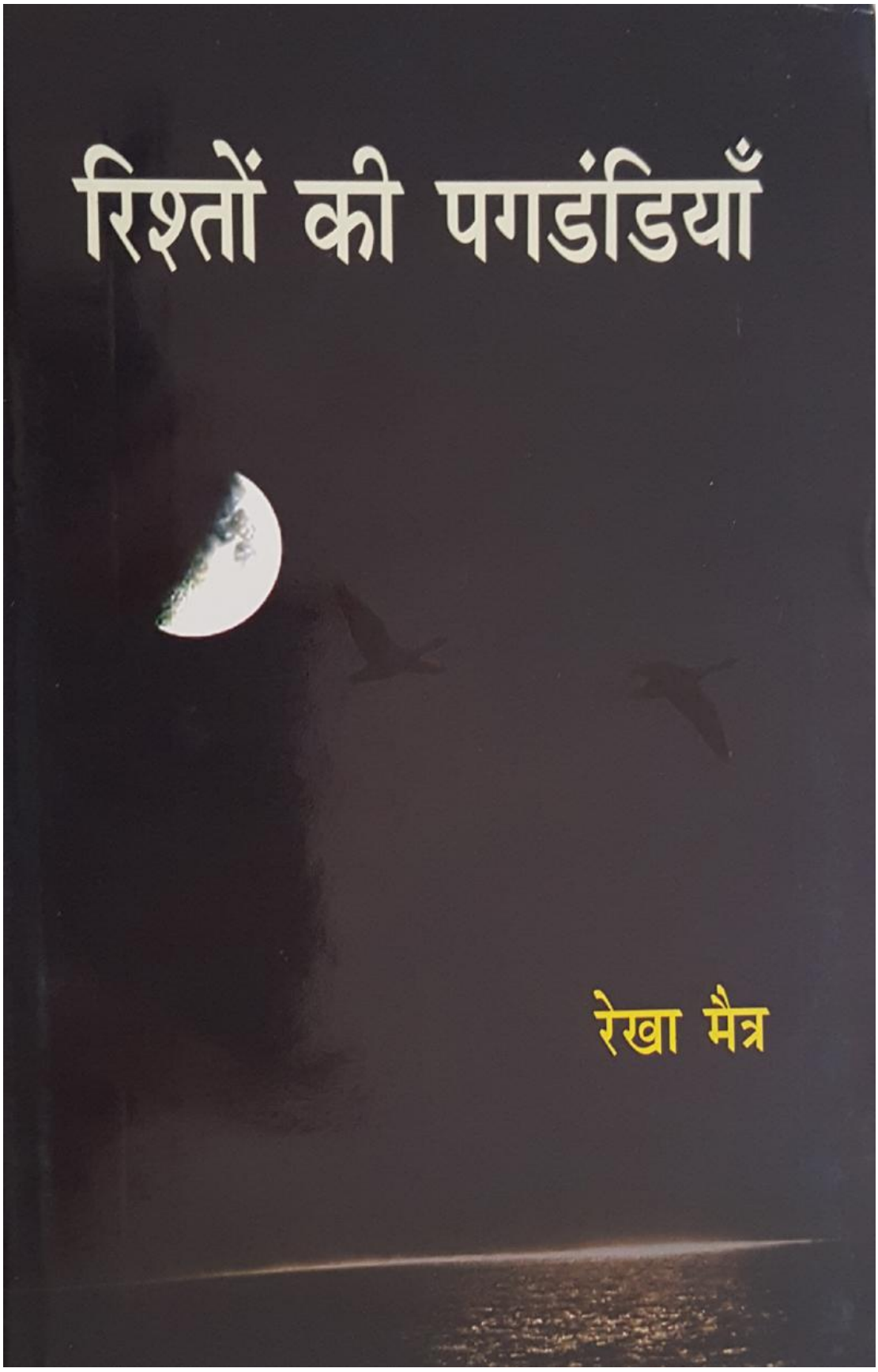

रिश्तों की पगडंडियाँ
रेखा मैत्र

वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन : 23273167, 23275710
e-mail : vani_prakashan@yahoo.com
vani_prakashan@mantraonline.com

निवेदन

मेरी कविता का सफ़र अभी ख़त्म नहीं हुआ है। घटनाएँ, दृश्य, हादसे यानि जो कुछ सामने से गुज़रता रहता है, उसे लिखने की कोशिश रहती हैं। अरुण महेश्वरी जी का आदेश हुआ कि मैं अपनी रचना प्रक्रिया पर कुछ लिखूँ। सीधे-सपाट शब्दों में कविता के जरिए अपनी बात कहना ही मक़सद है। बात पूरी की पूरी पाठकों तक पहुँचे, इसी से लच्छेदार शब्दों की कुहेलिका में उसके अर्थ न खो जाएँ– यही प्रयास रहता है।

मेरे आस-पास सुन्दर-सा परिवेश है। वहाँ मेरे मित्र-बन्धु मेरी कविताओं के सम्बन्ध में कभी अपने बहुमूल्य सुझाव भी देते है जिसकी मैं बड़ी कृतज्ञ, हूँ। दोस्तों का कहना है कि मेरी कविताओं का मूल स्वर मानवीय सम्बन्ध होने के बावजूद मैंने इससे बावस्ता शीर्षक अपनी किसी किताब को अब तक नहीं दिया। यहाँ तक कि प्रस्तुत किताब "रिश्तों की पगडंडियाँ" नाम मेरी मित्र सुजाता शर्मा का दिया हुआ है। मैंने ये नाम रखकर सिर्फ स्वीकृति की मोहर लगाई है।

मैं श्री अरुण महेश्वरी जी की बड़ी कृतज्ञ हूँ जो उन्होंने इतने कम समय में न केवल मेरी कविताओं को किताब का सुन्दर रूप दिया बल्कि बहुमूल्य सुझाव भी दिए। प्रमिला भटनागर, सेठ परिवार और घर के सभी सदस्य कल्याण, शमीक और प्रतीक की भी ऋणि हूँ जिनके सहयोग से इस पुस्तक का जन्म सम्भव हो सका। विशेष तौर पर मैं कृतज्ञ हूँ पद्म भूषण गुलज़ार जी की, जिन्होंने अपने नितांत व्यस्तता के क्षणों में से समय निकाल कर 'रिश्तों की पगडंडियाँ' पढ़ीं और उस पर पेश-लफ़्ज़ लिख कर मुझे सम्मानित किया।

–रेखा मैत्र

पेश-लफ़्ज़

खोना किसी भी चीज़ का हो, बड़े नुकसान की बात है। लेकिन कभी यूं भी होता है कि खोया हुआ कंचा जब पाया, तो उस गुत्थी से और बहुत-से कंचे निकल आएं। ऐसा ही कुछ रेखा जी की कविताओं के साथ हुआ...चंद कविताएं मिली थीं कि मैं एक पेश-लफ़्ज़ लिख दूं। वो कविताएं मुझसे खो गईं और कुछ लिखा था, वो भी गुम हो गया। इस बीच अमरीका गया। तो न्यूयॉर्क में रेखा जी से मुलाकात हो गई। उनकी कविताएं उनकी ज़बान से सुनकर और ही मज़ा आया। मेरे लिए उन कविताओं की क़द्र बढ़ गई। कविताएं अच्छी थीं ही। लेकिन उनमें रेखा जी का लहज़ा, आवाज़ और अंदाज़ भी शामिल हो गया। अब इन कविताओं को पढ़नेवाले उनकी आवाज़ तो न सुन सकेंगे। लेकिन उनके लहजे का अंदाज़ा वो उनके अलफ़ाज़ के चुनाव और बहर (मीटर) के बहाव से कर सकते हैं। वो

बयक-वक़्त सरल भी हैं और मुश्किल भी। सरल इसलिए हैं कि उनकी उपमाएं रोज़मर्रा की ज़िंदगी से उठाई हुई हैं और मुश्किल इसलिए कि रोज़मर्रा की मामूली सी बात के पीछे वो कोई न कोई जिंदगी का बड़ा असरार (रहस्य) खोल देती हैं :

"पहले उसे जब देखा था,
चाबी वाली गुड़िया-सी लगी थी
लोगों ने हंसाया वो हंस दी
लोगों ने रुलाया वो रो दी
वर्षों मेरी उससे मुलाकात नहीं हुई
सुनने में आया
वो बिगड़ गई है
उसे सुधारना ज़रूरी है
मैंने देखा—और कुछ नहीं हुआ था
खाली उसने चाबी से चलना
बंद कर दिया था
अपनी मर्ज़ी से चलना
शुरू कर दिया था
भीतर का भय
रिस गया था!

एक और सतह भी है इनकी कविताओं में, जो कभी-कभी यूं खुलती है, जैसे कोई ज्ञान का कटोरा लुढ़क गया हो

"कुंतल!
तुम तो सारे के सारे कौन्तेय से निकले
पांडु पुत्र-सी सांवली-सी सूरत
वैसी ही, अर्जुन-सी लक्ष्य वेध सीरत
जाओ, ज़िंदगी को द्रौपदी-सा वरण करो
कुंती सा मेरा ये
आशीर्वाद ग्रहण करो!

10 नवंबर, 2003 —गुलज़ार

अनुक्रम

बादलों के टुकड़े	13	सन्दूक	38
पगडंडियाँ	14	माँ	39
अहसास पत्थरो में...	15	शमीक के लिए...!	40
कॉलिम पौंग युवती	16	एक खूबसूरत ख़्याल	41
तिस्ता नदी	17	अमर के लिए...	42
सम्मोहन	18	आशा दीप	43
चटाई के घर	19	तस्वीर	44
रिश्तों की टूट-फूट	20	ऋतु के लिए...	45
पता	21	अचिंत के नामः	46
पैरिस	22	महक मोगरे की...!	47
मोनालिसा	24	तितली	48
सुर साधक	25	चट्टू कक्का के नामः	49
जुड़वाँ बच्चे के सवाल	26	खुशीः दुःख	51
रेशे	28	तुषारापात	52
कूड़ा	29	सुगन्ध तुम्हारी...	53
अंकुर	30	सात समुन्दर पार...	54
सीपी	31	बहुरंगी समय	55
मेरा देश	32	'बहुरूपी'	57
वतन	33	अनाहूत	58
दैनिन्दिनी	34	छुट्टी का दिन	59
पियुनी के फूल	35	एक सुनहरी भोर	60
गाथा सड़क की...!	36	वसन्तोत्सव	61
निश्चिंतता	37	उन्मुक्त छन्द	62

अनावरण 63
नाता 65
अनश्चिय 66
आवाज़ 67
अनिशा के लिए... 68
न्यू हेम्शायर की एक भोर 69
आदतें 70
न्यू हेम्शायर की एक रात 71
रखरखाव 72
प्रभु के नाम! 73
कटे-फटे रिश्ते 74
छिपा हुआ सोता 75
झीलों के शहर मिनेसोटा से लौटते हुए... 76
नॉरमन डेल झील के शहर में... 77
जन्म कविता का... 79
साधारण से असाधारण 80
गंगा और मिसिसिपी 81
काल की सीमा रेखा 82
कोई और तुम 83
चुनाव 84
उजाले 85
इक्कीसवीं सदी का युद्ध 86
रिश्तों की पंगडंडियाँ 87
चाबी वाली गुड़िया 88
अनुभव 89
'फुलझड़ी' 90
जन्म 91
आहत पल 92

बादलों के टुकड़े

उड़ते हुए विमान से नीचे देखा
बादलों के सफेद-सफेद टुकड़े
आसमान की साँवली नदी में
तैरती से लगे!
ये मेघ-शिशु विविध आकार लिए
कहीं सफ़ेद कमलिनी से
तो कहीं उजले हंसों से
कभी तैरते बजरों से
तो कभी बगुलों की कतारों से
कहीं मैं उनके साथ तिरती
कभी वो मेरे साथ
निस्सीम यात्रा पर निकल पड़ते!
कभी मैं इसी आसमान को बड़ी-सी स्लेट बनाती
फिर बादलों की खड़िया से
सारी स्लेट पर तुम्हारा ही नाम लिखती
यानि कहती-बताती
अपने लिए तुम्हारी अहमियत

(पैरिस में लौटते समय विमान में लिखी कविता)

पगडंडियाँ

तुमसे मिला प्यार
मैंने परिश्रम से नहीं पाया
जीवन की सकरी
पगडंडियों पर मेरे ही लिए
फूल सा खिला मुझे मिला!
हैरत नहीं है कि मैं
विस्मित भी हूँ, खुश भी
कृतज्ञ हूँ तुम्हारी
जो तुम मेरे लिए
यूँ खिल उठे!
इस प्राप्ति में
एक भरा-भरा सा सुख है
और कण-कण तुम्हें
जी लेने की लालसा...!

अहसास पत्थरों में...

सम्बन्ध हो तो लता-गुल्म से
अपने आधार को जकड़े
यदि कभी टूटे, यदि कहीं छूटें
अपने स्मारक छोड़ते चलें
पीछे अपनी अनुगूँज फैलाते
पत्थरों की दीवारों पर निशान धरते
मानो उन्हें कहते-बताते कि—
हम पत्थरों पर अहसास उगा सकते हैं!

(कॉलिंम पौंग प्रवास के दौरान लिखी कविता)

कॉलिम पौंग युवती

धुन्ध की झीनी सफेद
जार्जेटी साड़ी में लिपटी
कालिमपौंग युवती
अपने उन्नत शिखर पर
इतराती, बलखाती कौन जाने कहाँ चली?
कभी बादलों में छिपती
कभी नील मणि सी चमक जाती
उसमें बसी बस्तियाँ चाँद-तारों सी
जगमगा उठतीं!
अचानक धूप खिली
और उसकी साड़ी में ज़री-गोटे सज गए।
अब वह दुलहन सी खिल उठी!

(कॉलिमपौंग प्रवास के दौरान लिखी कविता)

तिस्ता नदी

तिस्ता नदी का
विस्तृत पहाड़ी वक्ष
उस पर धुन्ध का
फैला रुपहला आँचल
इठलाती, बल खाती
उछलती, कूदती
कुलाँचे भरती
अपनी अनादि काल की
बिछुड़ी सखी गंगा-महानंदासे
मिलने को विकल
अपनी अमृत जल के प्रति
पूर्ण विश्वस्त
अविराम चली!

(कॉलिमपौंग प्रवास के दौरान लिखी कविता)

सम्मोहन

ये कैसा सम्मोहन है
अपने नाम को जीवित रखने का
कभी मन्दिर की दीवारों पर
कभी मस्जिद की मीनारों पर
या चौराहों पर बुतों की सूरत में
तो कभी कालिंगपॉग के तिब्बती
काठ के खम्भों पर
लिख जाते हैं कहानी अपने जीवन की
यानि छोड़ जाते हैं चिह्न
अपनी सार्थकता के...
यूँ भी चिरंजीवी नहीं होती सार्थकता
इतिहास के पन्नों तक जाते-जाते
खोई है कई बार, कई कारणों से
फिर भी ये चिरंतन, निरर्थक प्रयास...!

(कॉलिमपौंग प्रवास के दौरान लिखी कविता)

चटाई के घर

चटाई से बने
इन मकानों में
कला की बारीकी
जिन्हें दीखती है दीखे
मुझे तो दीवारों से
झरती हुई असुरक्षा
उधड़े पलस्तर-सी
दीख पड़ती है!
हवा का हल्का-सा झोंका भी
भूकम्प का अहसास दिलाता
थोड़ी सी बारिश अक्सर
घर के भीतर ही बाढ़ की सृष्टि करती!
सिर छुपाने की जगह का
झूठा अहसास देते
ये चटाई से बने घर
बस, एक तसल्ली हैं
कहीं से घर की!

(कॉलिमपौंग प्रवास के दौरान लिखी कविता)

रिश्तों की टूट-फूट

सम्बन्धों का स्थायित्व
कभी दूर तक जाता है
हमेशा साथ रहने का
भ्रम भी बनाता है।
आदमी तब उसकी ज़रूरी
शर्त तक भूल जाता है।
फिर अचानक रिश्ते का
पाँव लड़खड़ाता है।
तब कहीं अगले का
ख़याल जाग पाता है।
साथी की देख-रेख
कहीं छूट गई थी।
पर, अब चेतने से
क्या बनना है?
अब तो रिश्तों को
टूटा ही चलना है!

पता

हम जो आए हैं यहाँ
हमको ज़रूर जाना है
ये ही दस्तूर है दुनिया का
सभी को निभाना है
तब भी एक ख़याल
मेरे ज़हन में घुमड़ता है
कहीं मैं चुपके से
इन खलाओं में
तुम्हारे लिए अपना
पता छोड़ जाऊँ
और तुम उसी ठिकाने को
खोजते-तलाशते
मुझ तक आ पहुँचो!

पैरिस

ये पैरिस की धरती
ये पैरिस की धरती
रात सोए नहीं, सुबह जागे नहीं!
ये पैरिस की धरती...
इसके गली-कूचे
रात-रात बतियाते
इसी से जब अलस्सुबह
नासमझ पर्यटक खटखटाते
ये कुछ यूँ दाखिल करती
अपने इस शहर में
जैसे उनीन्दी पत्नी
पति के लिए
दरवाज़ा खोलकर
दोबारा सो जाए
ये पैरिस की धरती...
हाँ, एक बात का ये
खूब ख़याल रखती है
खाने-पीने की दुकानें
अपने ग्राहकों के लिए
हमेशा खुली रखती है
ये पैरिस की धरती...
हर रात जब ये
सज-धज कर निकलती है।

सबका ध्यान अपनी ओर
बरबस ही खींचती है
मुझे तो ये घरेलू कम
नगर वधू की ज़्यादा दीखती है!

(पैरिस प्रवास के दौरान लिखी कविता)

मोनालिसा

ल्यूब म्यूज़ियम में
जब एक बार तुम्हें
और पास से देखा
लगा, क्यों तुम्हारी मुस्कान की बात
हर ओर सुनाई पड़ती है?
तुम्हारे जनक ने भी
तुम्हारी हँसी की ही चर्चा की
क्या पता क्यों मुझे
तुम्हारी आँखों में सदा
एक अजब सी तलाश दीखती है!
कमरे के एक छोर से दूसरे तक
तुम्हारी नज़रें मेरा पीछा करती रहीं
एक अलग सी भटकन
एक खास सी तलाश लिए
मोनालिसा की कुछ खोजती सी
आँखे...!

(पैरिस प्रवास के दौरान लिखी कविता)

सुर साधक

जगजीत!
तुम्हारे नाम के जनक
कहाँ जानते थे कि तुम
नाम की सार्थकता
सिद्ध करोगे!
सुरों को साधने में
तुमने जग जीता है।
हँसने-रोने को वे
मोहताज हैं तुम्हारे सामने!
शब्द पाँवों में पाजेब पहन कर
कैसे छम-छम नाचेंगे
विरहिणी नायिका-से कैसे
अश्रुपूर्ण हो उठेंगे
उजले फूलों-सी हँसी
कब अपने में समेट लाएँगे
सुर कैसे मादक महक से महकेंगे?
तुम्हें खूब पता है।
तुम्हारे सुरों ने
मेरी आत्मा के आकाश में
सफेद बादलों-सा
सूफी जाल फैलाया
ये मन उजला
हो आया!

(लोकप्रिय ग़ज़ल गायक श्री जगजीत सिंह को समर्पित)

गुड़वाँ बच्चे के सवाल

तुमने तो हमें
एक ही बीज से जना था न?
फिर ऐसा कैसे हुआ?
उसे तो खाने से सोने तक
तुम्हारी ममता की छाँव
नसीब होती रही
और...
मैं पूजा घर के कोने की
धूपबत्ती सा सुलगता रहा!
अभी तो मेरी खेलने-खाने की उम्र है
बड़ी-बड़ी समस्याओं से जूझना
मेरे बचपन के लिए ज़ुल्म है
इन नन्हें हाथों को फिर भी
खेल में नहीं सहोदर की देख में लगाता हूँ।
अचानक कल जब
तुम्हारी नज़रों से
मेरा बनाया फूल
अनदेखा गुज़रा
तब मुझे लगा—
तुम्हें कहूँ, फूल को भूलकर
तुम मेरे अस्तित्व को
तो नहीं भूल रहीं!

मेरी सुगन्ध तो
तुम्हारे आस-पास फैली है
चाहता हूँ
मेरी तिल-तिल जलने का
अहसास भी फैला रहे!

(एक ऐसे जुड़वाँ बच्चे की व्यथा जिसकी जुड़वाँ बहन अपंग थी और माँ का अधिकांश समय विकलांक बच्ची के साथ ही बीतता था।)

रेशे

किसी भी व्यक्तित्व की
बखिया गर उधेड़ो
ढेर सारे रेशे हाथ लगते हैं
कुछ अच्छे, कुछ बुरे
शायद इसी बेमेल
बुनाई का नाम इन्सान है!
तुम्हें भी मैंने भीतर तक
कुरेद डाला
दोस्ती का तार ही
ज्यादा मिला
देखो तो सबसे
ख़तरनाक है ये रिश्ता
पर, मुझको है
सबसे प्यारा!
दोनों ही पक्षों को
छूटने की समान छूट
इसीसे कच्चे धागों से
बंधा ये रिश्ता मैंने
तुम्हारे लिए चुना है!

कूड़ा

घूरे का ढेर जब
उसने बताया तुम्हें
तुमने क्या कूड़े की
सम्भावना पर सोचा था?
कितने ही जीवन को
कूड़ा जनमता है।
आम की गुठली
बीज ही रह जाती
अगर उसे कहीं
घूरा न मिलता
उसकी नन्हीं कोंपलें
मोहताज हैं कूड़े के ढेर की
सींचो तुम मन के गुलाबों को
कूड़े की खाद से
फिर सुगन्ध बन बरसों जन मानस पर!

अंकुर

बीज तो मैंने
एक ही दिन बोए थे
पानी-खाद सबको
साथ-साथ दिया था
पता नहीं क्यों
कुछ अंकुर बाहर आए
कुछ भीतर ही पड़े रहे
आहिस्ता-आहिस्ता
उपेक्षित से होने लगे
हठात् एक खयाल ने
जगाया मुझे
किसने दिया हक़ मुझे
उनकी सम्भावनाएँ छीनने का?
तब से मैं नियमित
पानी सभी को देती रही
आज मेरी आशा
अंकुरित हुई है
एक बीज जैसे
नींद से जागा है
उसकी कोंपलें
नहाई-धोई सी आई हैं
जाने क्यों लगा है
मेरे ही श्रम ने
उसे जना है!

सीपी

अब जाकर जाना है—
मेरे मन की सीपी में
तुम्हारा प्यार मोती सा
भीतर कहीं कोने में बसता है!
उसी के प्रकाश से मेरे
तन-मन में उजाला सा झरता है!
तभी चाहे तट की तपिश हो
या रेत की रूक्षता हो
अथवा सागर की अन्धेरी शीतलता
अपने कवच में सुरक्षित-सा बचा है!

मेरा देश

कहना है मुझे कुछ
तुझसे, ऐ देश मेरे
तेरी ही माटी में
पनपा अस्तित्व मेरा!
तेरी सुनहरी सुबह
तेरी सुरमई शाम
अर्थ मेरे जीवन को
नए-नए दे गई!
अब, जब मैं इतनी दूर
तुझसे बिछड़ कर आई
तब मैंने तेरा मूल्य
सही-सही जाना है।
ऐ उदार माटी!
ऐ मेरी मातृभूमि
तुझको मेरा नमन!

वतन

किसको अपना मैं कहूँ
किसको पराया समझूँ
मुझको मालूम नहीं!
कैसी विडम्बना है ये
जहाँ मैं जन्मी नहीं
जहाँ मैं पनपी नहीं
जिन हवाओं की थपकियों ने
मुझे सुलाया नहीं
जिस देश की सिरचढ़ी गौरया ने
मुझे जगाया नहीं
वो देश मुझे छूटे वतन सा
क्यों याद आता है?
कौन सा चुम्बक है वहाँ
जो मुझे यूँ खींचता है
और मैं...
विवश सी खिंचती चली जाती हूँ!